वरिष्ठ गीतकार डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया की रचनाधर्मिताः 'नदी का बहना मुझमें हो' के संदर्भ से

अवनीश सिंह चौहान

वरिष्ठ कवि डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया मानवीय मन एवं व्यवहार के विभिन्न आलम्बनों और आयामों को बड़ी बारीकी, निष्पक्षता और दार्शनिकता के साथ अपनी गीत–संग्रह 'नदी का बहना मुझमें हो' में प्रस्तुत करते हैं। उनकी यह प्रस्तुति उनके जीवन के गहन चिन्तन, संवेदनात्मक मंथन और सामाजिक सांस्कृतिक संचेतना को मुखरित करती है। मंच पर उनकी वाणी में उत्साह एवं उमंग, उनके मन की गतिमान विविध तरंगों और रचनाओं के वातानुकूलित प्रसंगों को देख बरबस ही सबका मन मोह जाता है, और जब उनकी इस जीवन्त मेधा को पाठक लिपिबद्ध पाते हैं तो वे 'वाह'–'वाह' की अन्तर्ध्वनि से रोमान्चित हो जाते हैं। उनकी विषयवस्तु का दायरा बड़ा ही व्यापक है–चाहे गांव की माटी हो, खेतों की हरियाली, शहरों की कंकरीट, आसमान में उमड़ती–घुमड़ती घटायें हों या हों जीवन के आधुनिक संदर्भ–सब कुछ बड़ी ही सहजता से गीतायित हो जाता है, उनकी रचनाओं में। देखा जाय तो इस कवि का साहित्य जीवन के सतरंगी अनुभवों का अद्‌भुत गुलदस्ता है।

डॉ. भदौरिया के इस संग्रह के गीतों में कभी तो हृदय के टूटते तारों की संताप भरी कराह का मर्मस्पर्शी चित्रांकन दिखाई पड़ता है तो कभी परिलक्षित होती है फूल–पाती से बनी सावनी–सुकून भरी छांव, जिसके तले न केवल कवि स्वयं, बल्कि पाठक भी कुछ पल चैन से ठहर–बसर कर भाव विभोर हो जाते हैं और कभी–कभी तो ऐसा लगने लगता है कि मानों कवि एक कुशल किसान की भांति कांति के बीज बो रहा हो तथा समाज एवं राष्ट्र के विच्छिन्न होते सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, नैतिक और राजनैतिक ढांचे की ओर संकेत कर सोये हुये पतनोन्मुख मानवों को सजग कर रहा हो। जो भी हो कवि की प्रखर संवेदना एवं प्रोत्कंठ भावुकता पाठकों–श्रोताओं को आल्हादित एवं सचेत करने के साथ–साथ उन्हें नीतिपरक और खुशहाल समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में जुट जाने की प्रेरणा भी प्रदान करती है।

डॉ. भदौरिया अपने गीत संग्रह ''नदी का बहना मुझमें हो'' में ऋषि दधीचि की तरह अपना सम्पूर्ण मनोधन मानव मात्र के कल्याण हेतु समर्पित करने को संकल्परत लगते हैं। वह बाबा तुलसीदास की अमर पंक्ति–'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' को जीवन में उतारते प्रतीत होते हैं। नदी बन कर जहां एक ओर वे आध्यात्मिक संवादों से हृदय को हृदय से जोड़ने का प्रयास करते हैं, वहीं सौहार्द, सहयोग, समानता और बन्धुत्व को बढ़ाने और अभावग्रस्त परित्यक्त और पीड़ित मानवों को सुखी करने के लिए अपनी वैचारिक आहुति देते दिखाई पड़ते हैं, ''ध्येय है/हर एक प्यासे कंठ को/परितृप्त करना''।

कवि चाहता है कि नदी की भांति ही उसकी वैचारिकता का प्रवाह धरा–धाम पर होता रहे, और उसकी चेतना एवं संजीवनी प्रभाव मानव मात्र को स्फूर्ति एवं उत्साह का संचार करती रहे। कवि की यह लोक हितकारी संकल्पना उसकी मानवीय सोच, सामाजिक प्रवृत्ति, सांस्कृतिक भागीदारी, स्वस्थ एवं सुन्दर हरे–भरे वातावरण को बनाने की चाह तथा थके–हारे मन को ऊर्जा देने की उत्कंठा पर टिकी है। यह उसकी एक कोशिश है–एक बहुत बड़ी कोशिश–जोकि उसके बुलन्द इरादे, दृढ़ इच्छाश ाक्ति एवं दायित्व बोध का रूपायन करती है। वह परम सत्ता में अटूट विश्वास रखते हुए सच्ची आस्था एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रचार–प्रसार में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को खपा देने की चाहत भी रखता है। तभी तो उल्लासित हो वह अतुलनीय कोशिश करता है।

मेरी कोशिश है
कि/नदी का बहना मुझमें हो।

तट से सटे कछार घने हों
जगह जगह पर घाट बने हों
टीलों पर मंदिर हों जिनमें
स्वर के विविध वितान तने हो
भीड़/मूर्च्छनाओं का
उठना–गिरना मुझमें हो।

समीक्षा

कवि भदौरिया जी का मानना है कि संसार में जीव–जन्तु, अच्छाई–बुराई, सुख–दुःख, गरीबी–अमीरी, सबलता–निर्बलता, आदि का अपना–अपना महत्व है। सो इन सबके प्रति उनकी दृष्टि विलक्षण है। वह उक्त सभी को सहृदयता से स्वीकारते हुए उनमें समायोजन, सन्तुलन, सद–संपर्क एवं अच्छे संस्कार स्थापित करने में अपने आपको एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं। साथ ही वह समान भाव से सभी प्रकार के जीव–जन्तुओं को सहारा देने की कामना भी रखते हैं। यथा–

जो भी प्यास पकड़ ले कगरी
भर ले जाये खाली गगरी
छूकर तीर उदास न लौटें
हिरन कि गाया कि बाघ कि बकरी

मच्छ, मगर/घड़ियाल
सभी का रहना मुझमें हो।

यह कवि पर–पीड़ा को भलीभांति समझता है। वह तो जीव मात्र की पीड़ा दूर करने हेतु अपने आपको होम कर देना चाहता है। उसे अपनी चिन्ता नहीं, उसे तो दुखियों पीड़ितों की चिन्ता सालती है। वह तो बीमार, शोषित, भूखे–प्यासे, निरीह एवं व्याकुल प्राणियों को सुखी देखना चाहता है। इस सद एवं शोभनीय कार्य के लिए वह अपने आपको एक बलिदानी सेवक के रूप में प्रस्तुत करता है–

मैं न रुकूं संग्रह के घर में
धार रहे मेरे तेवर में
मेरा बदन काट कर नहरें
ले जायें–पानी ऊसर में

जहां कहीं हो/बंजरपन का
मरना मुझमें हो।

डॉ. भदौरिया के गीत समकालीन जीवन और उसके कटु सत्य को आकार देते हैं, मानव और प्रकृति के बीच यंत्रवत होते रिश्तों के कारणों के साथ प्रकृति की मनोहर झांकियों को प्रस्तुत करते हैं, आपसी स्नेह, आत्मदान और पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की भावना को जाग्रत करते हैं, और अपनी मातृभूति, अपनी संस्कृति, अपनी विरासत और अपनी मूल्यों को पूरी निषठा से व्यंजित प्रतीत होते हैं। तभी तो ये गीत कालजयी बन गये।

गीतकार भदौरिया जी के गीत "एक अनुग्रह" में जॉन मिल्टन एवं निराला जी सरीके महान साहित्यकारों की भांति ज्ञान की देवी सरस्वती से सत्य को जानने, ज्ञानानन्द को पाने और अपने अन्दर की रिक्तता को भरने की सरस याचना की गयी है–

साज मिलाते, स्वर संभालते
जो गाना था/वह न गा सके
सृजन नृत्य–गति, लय अखण्ड अति
जो पाना था वह न पा सके

उस आनन्द/नृत्य से छिटका
घुंघरू, पुनः नियोजित कर दे।

गीतकार का मानव जीवन के प्रति नजरिया सन्तुलित, पारदर्शी एवं सटीक है। वह जीवन की विभिन्न लयों को गंभरीता से पिरोता है। उसका मानना है कि जीवन जीने का नाम है और इसके लिए जीने की कला को जानना निहायत जरूरी है। अन्यथा जीवन में सफल हो पाना इतना आसान नहीं। वह यह भी जानता है कि जीने में कई बार मरना पड़ता है आदर्शो को ताक पर रखना पड़ता है और अनचाहे समझौते करने को विवश होता है आदमी। भौतिक संसाधन उसे पूरी तरह से तृप्त नहीं कर पाते और यह भी सच है कि बिना उपयोगी एवं जरूरी संसाधनों के चल पाती है किसी विरक्त–संन्यासी की जीवन नौका। इससे कवि कहने को विवश हो उठता है–

जीकर देख लिया
जीने में

कितना मरना पड़ता है।

अपनी शर्तों पर जीने की
एक चाह सबमें रहती है
किन्तु जिन्दगी अनुबंधों के
अनचाहे आश्रय गहती है

क्या–क्या कहना
क्या–क्या सुनना
क्या–क्या करना पड़ता है।

सच है कि जीने में मरना पड़ता है। किन्तु कभी–कभी जीने मरने के बीच का द्वन्द्व, कई मुश्किलें भी खड़ा कर देता है। ये द्वन्द्व, ये संघर्ष मानव को कई बार दुविधा में भी डाल देता है और तब वह सोचता रह जाता है कि आखिर क्या करे? ऐसी स्थिति में उसका मार्गदर्शन करने वाले, हौसला बढाने वाले विरले ही हैं और उन विरलों में एक नाम इस गीतकार का भी जोड़ा जा सकता है। उसका आग्रह देखिए–

गुनगुनाती जिन्दगी की
लय न टूटे/देखियेगा

यह न हो, लोहा हमारे
सगे रिश्ते तोड़ दे
भूमि की हरियालियों को
मरुस्थलों में छोड़ दें

रंग रस मय/मधुर वृन्दावन
न छूटे देखियेगा।

आज का आदमी भैतिक उपलब्धियां अर्जित करने में इतना व्यस्त है कि अच्छा बुरा सोचने का भी उसके पास समय नहीं है। वह तो बिना सोचे–समझे तथा 'ऐन केन प्रकारेण' अपना कार्य सिद्ध कर लेना चाहता है। उसके लिए अवसरवादिता, लाभेच्छा, कपट, छल, छद्म आदि जीवन में सफलता की कुंजी बन गये हैं। वह तो दुहरा–तिहरा जीवन जी रहा है–

आंखों पर पट्टियां बंधी हैं
कोल्हू की हैं परिक्रमायें
अजर्फन आवेशों के मुख पर
वृहन्नला कत्थक मुद्रायें

सिर्फ मुखौटे/मृगराजों के
सीना–टांगे हैं भेड़ों की।

कवि भदौरिया जी इन बदली स्थितियों में आदमी का सटीक खाका खींचने के साथ–साथ उसके पतन के कारणों का भी विश्लेषण करते हैं। उनकी दृष्टि में वर्तमान व्यवस्था से उपजी विद्रूपताओं–विसंगतियों, गुण्डई, कर्ज, कमीशन, भ्रष्टाचार, कुशासन आदि ने समाज–राष्ट्र को कोढ़ी बना दिया है। वह व्यंग्यात्मक लहजे में कह उठते हैं–

नयी व्यवस्था तुझे बधाई
नस्ल दबंगों की उपजाई
तेरी पुण्य कोख से उपजे
कर्ज कमीशन जुड़वा भाई

सुविधा–शुल्क
लिए बिन दफ्तर
करें न मुंह से बात

अनुदानों के छत्ते काटे
आपस में अमलों ने बांटे
ग्राम विकास वही खाते में
दर्ज हुए घाटे ही घाटे

थोड़ा उठे
गिरे फिर 'होरी'
धंसे उठारह हाथ।

इसके बावजूद भी कवि मन भविष्य के प्रति आशान्वित है–

पूरब दिशा/कन्त कजरायी
फिर आसार दिखे पानी के

पूरा जिस्म तपन का टूटा
झुर–झुर–झुर/ढुरकी पुरवइया
उपजी सोन्धी गन्ध धूल में
पंख फुला लौटी गौरइया

सूखे ताल/दरारों झांके
लम्बे हाथ दिखे दानी के।

कवि का सकारात्मक दृष्टिकोण हमें प्रकृति के मध्य ले जाता है और प्रतीकों–प्रतिमानों से हमें गुदगुदाने–हंसाने और तनावमुक्त करने की चेष्टा करता है–

भर हथेली में हथेली/राग से
कसते हुए दिन आ गये।

फूल–पत्तों के नये श्रंगार ये
प्यार के पावों पड़े उपहार ये
खिलखिलाते खेत, हिलती डालियां
बाग से/हंसते हुए दिन आ गये।

चूंकि आज आदमी न केवल प्रकृति से बल्कि अपने राष्ट्र से समाज से और कभी–कभी तो अपने आप से इतना कटता चला जा रहा है कि कवि मन इससे बहुत दुखी हो उठता है। इसीलिए, आपसी प्रेम–स्नेह बनाये रखने और बीच की दूरियां पाटने के लिए उसका सुझाव है कि–

बैठ लें/कुछ देरी आओ
झील तट पत्थर–शिला पर।

लहर कितना तोड़ती है
लहर कितना जोड़ती हैं
देख लें/कुछ देर आओ
पांव पानी में हिलाकर।

मौन कितना तोड़ता है
मौन कितना जोड़ता है
तौल लें/औकात अपनी
दृष्टियों को फिर मिलाकर।

समीक्षा

प्रख्यात गीतकार डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया जी के गीतों में समकालीन समय की संवेदनाओं को बखूबी संजोया गया है। वे शिल्प और कथ्य दोंनों ही स्तर पर पाठकों का मन मोह लेते हैं। कुल मिलाकर, उनकी गीत–रचनाएं मानवीय चिन्ताओं की लयात्मक अभिव्यक्तियां हैं और लोकमन, लोक संस्कृति एवं अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य की मधुर व्याख्याएं।

–अवनीश सिंह चौहान
चन्दपुरा (निहाल सिंह)
जनपद–इटावा
(उ.प्र.)–206127

(समीक्षित कृति–'नदी का बहना मुझमें हो', रचयिता–डॉ शिव बहादुर सिंह भदौरिया, प्रकाशक–समन्वय प्रकाशन, मालाड पश्चिम, मुम्बई–400064, प्रथम संस्करण–2000 ई0, मूल्य–रू. 75/–, पृष्ठ–71, कवि का संपर्क पता–साकेत नगर, लालगंज, रायबरेली, उ.प्र.)